THE TIMES OF INDIA

Date: 20-01-17

Misplaced activism

Ban on jallikattu is neither desirable nor enforceable, it must go

The growing protests against the ban on the bull-taming sport of jallikattu in Tamil Nadu shed light on yet another case of misplaced animal rights and judicial activism. In 2014, the Supreme Court had banned jallikattu on the ground that bulls could not be allowed as performing animals. However, jallikattu is an age-old tradition in Tamil Nadu and continues to enjoy significant popularity. It is intrinsically linked to the rural-agrarian economy of the state where only the best bulls from indigenous species are reared for jallikattu.

While NGOs and animal rights activists have asserted that bulls are 'tortured' in jallikattu and have drawn comparisons with Spanish bull-fighting, this is far from reality. In fact, jallikattu is an event where the best bulls are displayed and the ones that win are sought for breeding by farmers. Thus, there's no question of harming the bulls as they serve an important economic and cultural function. In that sense, jallikattu plays a significant part in preserving and propagating native cattle breeds in Tamil Nadu.

The argument that engaging the bulls in sport itself is cruelty doesn't cut ice either. Agriculture in Tamil Nadu is getting mechanised and farmers cannot afford to keep bulls simply as pets. Would animal rights activists prefer that the bulls be sold and slaughtered for meat? Besides, the jallikattu ban is hardly enforceable as benign cultural practices enjoying widespread support can't be curbed through fiat. In fact, the issue has seen Tamil Nadu's rival political parties – AIADMK and DMK – both oppose the ban. Chief minister O Panneerselvam has met Prime Minister Narendra Modi to push for an ordinance to allow jallikattu. However, the PM's office has merely observed that the matter is sub judice as the Supreme Court is currently seized of petitions challenging the Centre's year-old notification allowing jallikattu.If BJP wishes to make political inroads in Tamil Nadu it makes sense for the national ruling party to explore the ordinance route on jallikattu, or alternatively to bring an amendment to the original prevention of animal cruelty legislation in the upcoming parliamentary session to allow jallikattu. As far as the Supreme Court is concerned, it must stick to its remit of narrowly interpreting the law. Judicial activism should not morph into social engineering projects. On jallikattu, it would suffice if the apex court regulates the sport rather than prescribe a wholesale ban.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 20-01-17

CBI: Neither caged parrot nor partisan hawk

The Central Bureau of Investigation (CBI) has a long tradition of serving as the political tool of the powers that be. The tradition would appear to be gaining strength, rather than being supplanted with healthy professionalism. The CBI's probe into graft allegations against Delhi's deputy chief minister Manish Sisodia and health minister Satyendra Jain, as well as arrest of two sitting members of Parliament from the Trinamool Congress would appear to more selective targeting of opponents of the ruling party than upholding probity in

public life. Former chief ministers of Uttar Pradesh, Mayawati and Mulayam Singh, have, in the past, directly and indirectly hinted at the use of CBI cases against them to exert political pressure. As India develops as a democracy, integrity of the institutions of the state must strengthen, not weaken.An institutional solution would have three parts, relating to appointment of the organisation's chief, lines of accountability and professionalism. Ideally, the bureau should have its own, directly recruited, professional cadre. The very process of deputation from various police forces is a node for injecting political patronage. The appointment of the bureau's chief is by the prime minister, the leader of Opposition in the Lok Sabha and the chief justice. This is not foolproof, as appointment of an interim chief whose tenure would witness the superannuation of some eligible candidates, shows.

Even more important is how the organisation is held to account. The CBI must report to the executive, as it does. Its chief must testify, on a regular basis, before a multiparty committee of Parliament. It, along with all other police outfits, must also be accountable to the National Human Rights Commission. Multiple lines of accountability would guarantee autonomy.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 20-01-17

चीन के साथ बेहतर रिश्ते हमारे हित में

अपने उत्तरी पड़ोसी मुल्क चीन के साथ बेहतर रिश्ते कायम करना भारत के अपने हित में है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं नितिन पई

भारत को पूर्वी एशिया को अपने विस्तारित पड़ोस के हिस्से के रूप में चिह्नित करना चाहिए। हिंद-प्रशांत क्षेत्र में स्थिरता और सुरक्षा की स्थापना करना भारत के राष्ट्रीय हित में है। ऐसा क्यों? इसलिए क्योंकि वर्ष 2000 के दशक के मध्य तक हू चिंताओ के नेतृत्व में चीन का शांतिपूर्ण उदय हो रहा था और वह धीरे-धीरे क्षेत्रीय विवादों पर अपनी स्थिति को आक्रामक बना रहा था और उसने पूर्वी एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के जल क्षेत्रों पर अपना दावा रखना शुरू कर दिया था। इसकी वजह से इस क्षेत्र के देशों ने समर्थन की आकांक्षा में भारत की ओर देखना शुरू किया। अपने सामरिक आकलन में अगर वे अमेरिका, चीन और भारत के बीच संतुलन कायम नहीं कर पाते तो उनके पास चीन के समक्ष समर्पण करने के सिवा कोई विकल्प नहीं था। इस स्तंभकार ने भारत सरकार से निरंतर यह आग्रह किया है कि वह उन भूराजनैतिक और भूआर्थिक अवसरों का लाभ उठाए जिन्हें चीन ने अनचाहे ही निर्मित कर दिया है।

यह बात आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी कि सात वर्ष पहले थी। शी चिनफिंग के अधीन चीन की विदेश नीति आक्रामक से अत्यधिक आक्रामक होती चली गई। इस दौरान उसने हमेशा अहंकार और जोखिम लेने की शक्ति का परिचय दिया। चीन के नए नेतृत्व ने शांतिपूर्ण विकास की अवधारणा को पूरी तरह खत्म कर दिया लेकिन वह हिंद-प्रशांत क्षेत्र में क्षेत्रीय शक्तियों की दुश्मनी की भावना को प्रबंधित करने में कामयाब रहा।

चीन ने 'वन बेल्ट, वन रोड' (ओबीओआर), समुद्री रेशम मार्ग और चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारे (सीपीईसी) की मदद से अपने प्रभुत्व में काफी इजाफा किया है। ऐसा उसने उस क्षेत्रीय सद्भावना के बगैर किया जिसके चलते उसे एशिया केंद्रित आर्थिक और सुरक्षा ढांचे में प्रवेश करने का अवसर मिला था। दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों ने इस पूरे प्रकरण को अत्यधिक चिंता के साथ देखा क्योंकि उनके कई आसियान साथी चीन के खेमे में चले गए। मैंने अपने पुराने आलेखों में आसियान को लेकर जिस खाई की बात की थी वह लगातार बढ़ती ही जा रही है।

चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग अब केवल विवादित क्षेत्रों में चीन की दावेदारी तक ही सीमित नहीं हैं। शायद उन्होंने यह आकलन किया हो कि चीन अब इतना अधिक मजबूत हो गया है कि वह अपनी शर्तों पर चीजें तय कर सकता है। गत वर्ष नवंबर में हॉन्गकॉन्ग के अधिकारियों ने सिंगापुर के सशस्त्र बलों के उन वाहनों को जब्त कर लिया था जो ताइवान में पारंपरिक अभ्यास से लौट रहे थे। इसमें दो राय नहीं कि शी चिनफिंग के नेतृत्व वाली चीन की सरकार ने जानबूझकर ऐसा किया था। इसी प्रकार जब मंगोलिया ने दलाई लामा को उलानबतार के एक बौधमठ में जाने की इजाजत दी तो चीन ने उसे भी अधीनता स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया। चूंकि दलाई लामा इससे पहले भी कम से कम आठ बार मंगोलिया की यात्रा पर जा चुके हैं इसलिए चीन की इस बार की प्रतिक्रिया अप्रत्याशित प्रतीत होती है।

इस सप्ताह चीन ने ताइवान के खाड़ी क्षेत्र में खामोशी से एक विमानवाहक पोत रवाना कर दिया। यह उसकी आक्रामक नीति का एक और उदाहरण है। अभी कुछ ही सप्ताह पहले उसने अमेरिका की नौसेना के नाक तले से एक पानी के नीचे काम करने वाला ड्रोन चोरी करके उसको चुनौती दे डाली थी। यह निश्चित नहीं है कि डॉनल्ड ट्रंप के नेतृत्व वाला नया अमेरिकी प्रशासन चीन के साथ सैन्य समीकरणों को किस तरह देखेगा। परंतु शी चिनफिंग नए अमेरिकी प्रशासन की परीक्षा करने पर तुले नजर आते हैं।

भारत से यह मांग है कि वह वह क्षेत्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए यहां मजबूत भूमिका निभाए। लेकिन समय बीतने के साथ भारत के लिए ऐसा करना मुश्किल और जोखिमभरा होता गया है। मोदी सरकार के बारे में जानकारी है कि वह वियतनाम को मध्यम दूरी तक सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल बेचने की योजना बना रही है। ऐसी स्थिति में चीन भारत और वियतनाम दोनों पर दबाव बनाएगा। हालांकि भारत और वियतनाम के लिए दबाव में आकर अनुबंध से पीछे हटना कतई श्रेयस्कर नहीं होगा।

अगर भारत की छवि ऐसी बनती है कि वह भरोसेमंद साझेदार नहीं है और वादे पर खरा नहीं उतरता है तो यह चीन के हित में होगा। चीन के टीकाकारों ने इस बात की ओर बाकायदा ध्यान खींचा कि दलाई लामा की यात्रा के बाद जब चीन ने मंगोलिया के साथ सख्ती की तो भारत का एक अरब डॉलर के ऋण का वादा भी उसे चीन के आर्थिक प्रभुत्व से नहीं बचा सका।

भारत को चाहिए कि वह अपनी प्रतिबद्धताओं को लेकर खासा गंभीर रहे। अगर एक बार उसने किसी चीज की प्रतिबद्धता जता दी तो उसे चीन के विरोध के बावजूद हर हाल में उसे निभाना चाहिए। बढ़ते जोखिम और उभरती अनिश्चितताओं के बीच हिंद-प्रशांत क्षेत्र में विश्वसनीयता बहुत अहम हो चली है। इस दलील का अर्थ किसी भी तरह चीन की दुश्मनी मोल लेना नहीं है। यह भारत के हित में होगा कि वह अपने उत्तरी पड़ोसी मुल्क से करीबी रिश्ते कायम करे। हमें चीन और अमेरिका दोनों से करीबी रिश्ते कायम करने चाहिए। बल्कि इतने अच्छे जितने कि उन दोनों के आपस में भी नहीं हों। लेकिन ऐसा केवल एकतरफा ख्वाहिश करने से नहीं होगा। न ही चीन का वर्चस्व स्वीकार करने से यह हो पाएगा। भारत जितनी अधिक आर्थिक शक्ति हासिल करेगा और जिस हद तक विदेश नीति संबंधी विश्वसनीयता हासिल करेगा, चीन भारत की द्विपक्षीय रिश्तों की चाहत का उसी हिसाब से प्रत्युत्तर होगा।

(लेखक तक्षशिला इंस्टीट्यूट के सह संस्थापक और निदेशक हैं। यह जन नीति से जुड़ा एक स्वतंत्र शोध एवं शिक्षण संस्थान है।)

Date: 20-01-17

तमाम सहूलियतों के साथ अनेक मुश्किलों का भी सबब स्मार्टफोन

ऐपल अपनी पेशकश के 10 वर्षों का जश्न मना रही है लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनी में एक वरिष्ठ अधिकारी का मिजाज बिगड़ा हुआ है। उनकी खीझ वही है, जो अमूमन स्मार्टफोन को लेकर होती है। अपनी टीम के साथियों का अक्सर अपने स्मार्टफोन में झांकना, यहां तक कि महत्त्वपूर्ण बैठकों के दौरान भी ऐसा करना उन्हें उत्तेजित कर देता है और उन्हें कोई बेहतर रास्ता तलाशने पर मजबूर होना पड़ता है।

दैनिक बैठकों का दौर शुरू होने से पहले उनके पीछे भीमकाय स्क्रीन पर तमाम स्लाइड पर अलग-अलग संदेश नजर आते हैं। एक संदेश का मजमून कुछ यूं है, 'वी लिव इन द इरा ऑफ स्मार्टफोन्स ऐंड स्टुपिड पीपुल' यानी हम स्मार्टफोन और बेवकूफ लोगों के दौर में जी रहे हैं। एक अन्य दृश्य में झूले पर सवार युगल अपने फोन की ओर देख रहे हैं, एक अन्य दृश्य में स्वर्ग में दो चरित्र दर्शाए गए हैं, जिनका झुकाव भी फोन की ओर है।मित्र कहते हैं कि इसका प्रभाव बहुत उत्साहजनक नहीं है। लोग अधीर हो जाते हैं और उनमें से कुछ नियमित अंतराल पर बाहर जाते रहते हैं। उन्हें हैरानी है कि तब क्या होगा जब अंतर्निहित अरबों सेल्युलर मॉड्यूल घड़ियों और यहां तक कि चश्मे के फ्रेम जैसी पहनने वाली चीजों के जरिये काम करने लगेंगे। वह ऐसे अकेले शख्स नहीं हैं। आखिरकार स्मार्टफोन के जरिये तमाम स्वाभाविक फायदों के बावजूद उन्होंने हमारी जिंदगी में तमाम स्तरों पर असुविधाएं भी पेश की हैं, जिनका कामकाजी संतुलन पर बुरा असर पड़ रहा है। वास्तव में एक दूसरे से संपर्क के लिए चौबीसों घंटे एक दूसरे से जुड़ा रहना बेहद आम हो गया है। लिहाजा, फोन जेब में आश्रय लेते हैं और टैबलेट को संगत देते हैं।अधिकांश व्यस्त अधिकारी प्रत्येक 5 से 10 सेकंड के दरमियान अपना स्मार्टफोन देखते हैं और उनमें से तमाम इस बात को लेकर अपराधबोध महसूस करते हैं कि वे अपनी टीम के साथियों को ऐसी सभी दिलचस्प चीजों से रोकते हैं, जिसे वे टेक्स्ट या ट्वीट के जरिये कहना चाहते हों। उन्हें यह अहसास ही नहीं होता कि वे एक मानसिक बीमारी की चपेट में आ गए हैं, जिसे मनोचिकित्सक 'नोमोफोबिया' का नाम देते हैं, जिसमें कोई व्यक्ति अपने फोन से अलग होने को लेकर स्थायी अधीरता का शिकार हो जाता है।

एक वरिष्ठ अधिकारी कहते हैं कि उन्हें अपने दफ्तर से घर तक के लंबे सफर का इंतजार रहता है क्योंकि रास्ते में वह अपने काम पर ज्यादा ध्यान दे पाते हैं। यहां तक कि छुट्टिंयों के दौरान भी यही मानकर चलते हैं कि कुछ 'तेजतर्रार' कारोबारी कॉल को नजरअंदाज नहीं कर सकते। उनके जैसे तमाम लोग हैं। अगर होटल में वाईफाई न हो या मोबाइल फोन का सिग्नल कमजोर हो तो वे बेचैन हो जाते हैं। अगर उनके फोन की बैटरी कम हो जाती है तो वे परेशान होने लगते हैं और उन्हें यह चिंता सताने लगती है कि अगर वे ऑनलाइन नहीं रहेंगे तो चीजें गलत मोड़ ले लेंगी। हममें से तमाम ऐसे लोग हैं जो रात को सोने से पहले और सुबह उठने के साथ ही टेक्स्ट और ई-मेल देखते हैं। सेंटर फोर क्रिएटिव लीडरशिप द्वारा कराए गए एक अध्ययन के अनुसार जो पेशेवर, प्रबंधक और पदाधिकारी अपने कार्यस्थल पर स्मार्टफोन लेकर जाते हैं, वे रोजाना 13.5 घंटे काम करते हैं। (इसमें हफ्ते में 72 घंटे हो जाते हैं, जिसमें सप्ताहांत पर किया जाने वाला काम भी शामिल है) अध्ययन में यह तथ्य भी सामने आया कि उन्हें परिवार के साथ वक्त बिताने, कसरत, स्नान आदि क्रियाओं और घर के अन्य कामकाजों जैसी गतिविधियों के लिए सप्ताह के आम दिनों में औसतन केवल तीन घंटे ही मिलते हैं। इसके अनुसार, 'आश्चर्यजनक रूप से इस दुविधा के लिए वे तकनीक को दोष नहीं देते, जो उनके जीवन को प्रभावित करती है।'

यही वजह है कि तमाम लोग 'हमेशा ऑन' रहने को लेकर थके मांदे और क्रोधित नजर आते हैं और उनका मन कभी नहीं भरता है और उनके निजी जीवन और पेशेवर जिंदगी के बीच की रेखा खत्म नहीं तो धुंधली जरूर हो जाती है। सबसे खतरनाक चीज तो खुद को स्थायी गतिविधियों के अनुकूल बना देना है और लोग लगातार स्मार्टफोन की ओर टकटकी लगाए रहते हैं कि कोई नया मेल तो नहीं आया। पेशेवर तनाव पर एक अन्य शोध दर्शाता है कि स्मार्टफोन ने हमारे जीवन में ऐसी घुसपैठ की है, जिसने हमारी नींद को भी प्रभावित किया है और एक तरह से काम से विरक्ति को असंभव बना दिया है और यह 'हमेशा सक्रिय' रहने वाला भाव बन गया है। तमाम लोग जो कार्य से संबंधित संचार के लिए अपने स्मार्टफोन का उपयोग करते हैं, उन्हें अपने काम से विलग होने में मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक मुश्किलें झेलनी पड़ती हैं। इससे वे कार्य संबंधी अतिरेक ग्रंथि पालने को लेकर हद से ज्यादा संवेदनशील हो जाते हैं, जिसके खासे दुष्प्रभाव होते हैं।

शुक्र है कि स्मार्ट नियोक्ता अब यह महसूस कर रहे हैं कि अगर वे अपने कर्मचारियों को चौबीसों घंटे सेवाएं देने के लिए तत्पर रखेंगे तो वे अपने सबसे प्रतिभाशाली पेशेवरों को बरकरार नहीं रख पाएंगे। स्मार्टफोन का उपयोग एक हद तक सीमित कर अनुशासित होकर भी उसका बखूबी उपयोग करके अंतिम निर्णय लिया जा सकता है। ऐसे में अगर आप छुट्टिंयां मनाने के लिए जा रहे हैं तो 'आउट ऑफ ऑफिस' यानी दफ्तर से बाहर होने का अलर्ट लगा सकते हैं और सोने के समय फोन स्विच ऑफ कर सकते हैं। आखिरकार आप अपने आप में दुर्लभ हैं जो ऐसे मुद्दों को सुलझा सकते हैं। वे आपकी ओर से 'स्मार्ट' कॉल के बिना ही कर सकते हैं।

दैनिक भास्कर

Date: 20-01-17

चुनाव आयोग के प्रस्ताव पर फिर विचार होना चाहिए

हैरानी की बात है कि जब सरकार नोटबंदी के माध्यम से कालेधन के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई कर रही हो, उस समय रिश्वत दिए जाने पर चुनाव रद्द करने के लिए कानून पास करने का चुनाव आयोग का प्रस्ताव कानून मंत्रालय रद्द कर देता है। इसलिए अगर आयोग ने सरकार से उस प्रस्ताव पर दोबारा विचार करने का अनुरोध किया है तो यह उचित ही है। नोटबंदी के ठीक 10 दिन बाद सरकार ने उस प्रस्ताव को रद्‍्द करके यह जता दिया कि वह या तो और मोर्चे नहीं खोलना चाहती या फिर चुनाव सुधार के लिए अन्य पार्टियों की भी राय लेना चाहती है।

आयोग की दलील है कि जब 1951 के जनप्रतिनिधित्व कानून में 58 ए के रूप में बूथ कैप्चरिंग होने पर उसे चुनाव रद्द करने का अधिकार है तो इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए रिश्वत दिए जाने पर क्यों न चुनाव रद्द करने के लिए नई धारा 58 बी भी जोड़ दी जाए। कानून मंत्रालय की दलील थी कि रिश्वत दिए जाने को साबित करने के लिए सबूत और तहकीकात की जरूरत होती है, जबकि बूथ कैप्चरिंग स्वतः स्पष्ट होती है। आयोग का कहना है कि जांच पड़ताल तो बूथ कैप्चरिंग के मामले में भी होती है। हैरानी होती है कि नोटबंदी जैसा कड़ा कदम उठाने वाली सरकार चुनाव आयोग की सिफारिश मानकर वोट खरीदने के लिए रिश्वतखोरी पर त्वरित कार्रवाई का अधिकार क्यों नहीं देना चाहती?

सरकार कह भी चुकी है कि कालेधन से चुनाव की फंडिंग होती है। इससे लगता है कि या तो सरकार अभी बहुत सारे मोर्चों पर काम करने के लिए तैयार नहीं है और नोटबंदी का पांच राज्यों के चुनावों में असर देखकर ही कुछ करना चाहती है। इसके अलावा यह भी हो सकता है कि

सरकार किसी भी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सुधार का श्रेय किसी लोकतांत्रिक संस्था को देने की बजाय स्वयं और अपने नेतृत्व के पास रखना चाहती है। अगर ऐसा न होता तो सरकार अब तक लोकपाल जैसी संस्था का गठन कर चुकी होती और सुप्रीम कोर्ट में जजों की पर्याप्त नियुक्ति कर चुकी होती। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि चुनावों में रुपए बांटना अब सामान्य चलन हो चुका है। बिना इसके न तो ग्राम प्रधानी का चुनाव जीतना आसान है और न ही सांसद का। यह रवायत हर चुनाव में बढ़ती ही जा रही है, इसलिए अगर हमारी राजनीतिक प्रक्रिया को साफ-सुथरा बनाना है तो सरकार को चुनाव आयोग के सुझाव पर गंभीरता से विचार करना ही चाहिए।

जनसत्ता

Date: 19-01-17

कोताही का दंड

भारतीय पुलिस सेवा के दो वरिष्ठ अधिकारियों को कथित तौर पर काम में कोताही बरतने के चलते बर्खास्त कर सरकार ने यही संकेत देने का प्रयास किया है कि वह नौकरशाही में चुस्ती देखना चाहती है। इनमें एक केंद्र शासित प्रदेश कैडर के और दूसरे छत्तीसगढ़ कैडर के थे। अखिल भारतीय सेवा (मृत्यु सह सेवानिवृत्ति लाभ) नियम-1958 के तहत प्रशासनिक अधिकारियों की एक बार पंद्रह साल और दूसरी बार पच्चीस साल की सेवा पूरी होने पर उनके कामकाज की समीक्षा की जाती है। दोनों अधिकारियों का सेवा काल पंद्रह साल पूरा हो चुका है। इसी नियम के तहत दोनों अधिकारियों के कामकाज में कोताही बरतने का आरोप पुष्ट पाया गया। विस्तृत समीक्षा के बाद इन दोनों के खिलाफ जनहित में यह कार्रवाई की गई है। दो दशक बाद किसी प्रशासनिक अधिकारी के खिलाफ इस तरह का फैसला किया गया है। माना जा रहा है कि इससे दूसरे अधिकारियों को सबक मिलेगा।

यों अधिकारियों के सरकार के साथ सहयोग का रुख न अपनाने पर तबादले वगैरह के फैसले तो किए जाते रहते हैं, जिसमें अधिकारियों के कामकाज में सरकार के अनावश्यक दखल के आरोप भी लगते रहते हैं। मगर किसी अधिकारी को मुस्तैदी से काम न करने की वजह से सेवानिवृत्त कर दिया जाना निस्संदेह नौकरशाही के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। लंबे समय से प्रशासनिक सुधार की मांग उठती रही है। इसे लेकर कई समितियां भी गठित की गईं, जिन्होंने कुछ अहम सुधार के लिए सुझाव भी दिए। मगर उन पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया। यह छिपी बात नहीं है कि बहुत सारे प्रशासनिक अधिकारी सत्ता पक्ष की मंशा के अनुरूप खुद को ढालने में ही अपना भला समझते हैं। इससे आम लोगों के हितों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जन-सरोकार के कामों से लगातार उनकी दूरी बनी रहती है। वैसे भी भारतीय प्रशासनिक ढांचा कुछ इस तरह का है कि आम लोगों और अधिकारियों के बीच काफी दूरी बनी रहती है। इस दूरी को समाप्त करने पर काफी समय से बल दिया जाता रहा है, मगर प्रशासनिक सुधार की दिशा में कदम न बढ़ाए जाने के कारण इसमें अब तक कोई बदलाव नहीं आ पाया है।सरकार की तमाम योजनाएं प्रशासनिक अधिकारियों के बल पर ही कामयाब हो पाती हैं। अगर वे अपना कर्तव्य निभाने में लापरवाही बरतते हैं, तो योजनाएं चाहे जितनी दूरगामी हों, वे नाकाम ही साबित होती हैं। इसलिए अपेक्षा की जाती है कि प्रशासनिक अधिकारी अधिक से अधिक जनता से निकटता बनाएं, उसकी जरूरतों को समझें और स्थितियों के अनुरूप कदम बढ़ाएं। अनेक प्रशासनिक अधिकारियों ने अपने कामकाज

से मिसाल कायम की है। मगर उनसे प्रेरणा लेने के बजाय अधिकतर अधिकारी लोगों से दूरी बना कर और उनमें भय का माहौल पैदा कर अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करते देखे जाते हैं। योजनाएं उनके लिए कमाई का जरिया नजर आती हैं। ऐसे में अगर केंद्र सरकार ने दो वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को सेवा निवृत्त करने का फैसला किया है, तो उम्मीद बनी है कि वह प्रशासनिक सुधार की दिशा में कठोर कदम उठाने की पहल करेगी। हालांकि जिस तरह उस पर वरिष्ठ अधिकारियों को नजरअंदाज करके कुछ अधिकारियों को अहम पदों पर बिठाने के आरोप लगे हैं, उससे उसकी मंशा पर भी सवाल उठे हैं। ऐसे में सरकार अगर सचमुच प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त करना चाहती है तो उसे प्रशासनिक सुधार की दिशा में व्यावहारिक पहल करनी चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 19-01-17

कहीं खो न जाएं साइबर दुनिया में टहलते हमारे बच्चे

उसकी उम्र सोलह वर्ष है। वह कक्षा नौ में पढ़ता है। दिल्ली के एक बड़े अस्पताल में उसका इलाज चल रहा है। बीमारी का नाम है-इंटरनेट गेमिंग एडिक्शन। उसे दवाएं तो दी ही जा रही हैं, शरीर के अंग ठीक से काम कर सकें, इसके लिए फिजियोथेरेपी भी की जा रही है। मनोविज्ञानी से भी उसका इलाज कराया जा रहा है। यह किशोर हर रोज आठ घंटे कंप्यूटर के सामने बिताता था। कभी-कभी यह अवधि 12 घंटे भी हो जाती थी। उसे न सोने का होश रहता, न वह अपने मित्र-परिचितों से मिलता-जुलता था। 24 घंटे उसके दिमाग पर इंटरनेट पर खेले जाने वाले खेल छाए रहते थे। जब वह कंप्यूटर से दूर रहता, तो बात-बात पर गुस्सा करता था। घर वाले उसके इस व्यवहार से तंग आ गए। परिवार के सदस्यों को तब बहुत चिंता हुई, जब छह महीने में उसका वजन करीब 10 किलो कम हो गया। अब अस्पताल में उसे धीरे-धीरे इंटरनेट से दूर किया जा रहा है। अब भी डॉक्टरों ने उसे पूरी तरह इंटरनेट इस्तेमाल करने से रोका नहीं है। हफ्ते में दो-तीन बार वह दो घंटे कंप्यूटर पर खेल सकता है।

टेक्नोलॉजी दुनिया भर के दरवाजे हमारे लिए, बच्चों के लिए खोलती है, इसलिए वह वरदान भी है, मगर उसका बहुत ज्यादा इस्तेमाल खतरनाक हो सकता है, खास तौर से बच्चों के लिए। इस पर लंबे अरसे से चिंता प्रकट की जा रही है। भारत ही नहीं, दुनिया भर के बच्चे तकनीक के दुष्प्रभाव से पीड़ित हैं। बच्चों के लिए काम करने वाले संगठन और पश्चिमी विचारों से प्रेरित लोग अक्सर कहते हैं कि बच्चों को किसी बात के लिए रोका न जाए। लेकिन बहुत से डॉक्टर, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री मानते हैं कि बच्चों की गतिविधियों पर नजर रखना जरूरी है। कई माता-पिता को तो यह सुझाव तक दिया जाता है कि वे बच्चों के मोबाइल, कंप्यूटर और उनकी मित्र मंडली पर नजर रखें, वरना होता यह है कि बच्चे कई बार जिन राहों पर बढ़ जाते हैं, वहां से उन्हें लौटा लाना बहुत मुश्किल होता है।

इसमें प्रमुख बात होती है कि बच्चे माता-पिता, परिजनों से अपनी बात कह सकें। उनकी बात सुनी जाए। अगर वे कुछ गलत करते हैं, तो उन्हें डांटने-डपटने की बजाय समझाने की कोशिश की जाए। अगर तब भी बच्चों की हालत में सुधार न हो, तो उन्हें काउंसलर के पास ले जाया जा सकता है। स्कूल से भी मदद ली जा सकती है। मगर स्कूल से मदद तभी मिल सकती है, जब परिजन लगातार स्कूल के संपर्क में रहें।

दुर्भाग्य से आज महानगरों, शहरों की हालत यह है कि माता-पिता के पास भी बच्चों को देने का कम समय बचा है। बहुत से बच्चे शाम के वक्त या गए रात ही अपने माता-पिता को देख पाते हैं। अक्सर माता-पिता यह सोचकर कि दिन में घर में बच्चा बोर न हो, उसे कंप्यूटर, मोबाइल और इंटरनेट जैसी सुविधा उपलब्ध करा देते हैं। ऐसे में, दफ्तर या अपने-अपने काम में लगे लोगों को यह जान पाना सचमुच मुश्किल होता है कि दिन में बच्चे ने क्या देखा, कौन सी साइट सर्च की। शायद यही वजह है कि बच्चे टेक्नोलॉजी की राह पकड़कर गलत चंगुल में फंसने लगे हैं। वे कई बार चोरी-चकारी करने लगते हैं, ड्रग एडिक्ट हो जाते हैं, यही नहीं अवसाद का शिकार भी होने लगे हैं। बलात्कार और हत्या जैसे गंभीर अपराधों में भी किशोरों की संलिप्तता बढ़ने लगी है।किशोरों में इस तरह के अपराध की प्रवृत्ति बढ़ने पर केंद्रीय बाल विकास मंत्रालय ने पिछले दिनों गहरी चिंता प्रकट की थी। यहां तक कि जुवेनाइल जस्टिस ऐक्ट में भी परिवर्तन किया गया है। अभी कुछ ही दिनों पहले बच्चे किस-किस तरह से साइबर अपराधों के शिकार बन रहे हैं, इस पर यूनिसेफ ने एक गोष्ठी की थी। उसमें पता चला था कि बच्चों पर साइबर अपराधी अक्सर नजर रखते हैं। वे मौज-मजे से लेकर डरा-धमकाकर बच्चों को अपने जाल में फंसा लेते हैं।

इस लेख की शुरुआत में जिस किशोर का जिक्र किया गया है, उसका इलाज करने वाले डॉक्टर कहते हैं कि बच्चों में इस तरह के इंटरनेट एडिक्शन पर भारत में गंभीर शोध की जरूरत है। सच तो यह है कि बच्चे साइबर स्पेस से जितने अधिक जुड़े हैं, अपनी जमीन और परिवार से उतने ही दूर होते गए हैं।

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)